International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 27-07-2021, Accepted: 13-08-2021, Published: 28-08-2021
Volume 7, Issue 4, 2021, Page No. 154-155

खड़ी बोली और साहित्यिक भाषा के रूप में उसका विकास

ज्योत्स्ना आनंद
एसोसिएट प्रोफ़ेसर, हिंदी विभाग, रामजस कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

सारांश
प्रस्तुत शोध–आलेख का ध्येय खड़ी बोली आन्दोलन के सन्दर्भ में साहित्येतिहास के वास्तविक परिदृश्य को आलोकित करना रहा है । शोध–आलेख का उद्देश्य खड़ी बोली के जन्म से लेकर उसके एक साहित्यिक गद्य की भाषा के रूप में विकसित होने की यात्रा का परिचय प्रदान करना है। इसमें खड़ी–बोली के प्रचार–प्रसार एवं उसके प्रभाव क्षेत्रों पर प्रकाश डालना हमारा ध्येय रहा है । शोध–आलेख में समय सन्दर्भ के परिप्रेक्ष्य में साहित्यिक व्यक्तित्वों सहित ऐतिहासिक सन्दर्भों को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

मूल शब्दः खड़ी बोली, हिंदी, हिंदवी, दक्खिनी हिंदी, भारतेंदु युग, फोर्ट विलियम कॉलेज

प्रस्तावना

खड़ी बोली का जन्म ग्यारहवीं शताब्दी में अपभ्रंश से स्वीकार किया जाता है। पहले इसे हिंदी, हिंदवी या दक्खिनी हिंदी के नाम से जाना जाता था, बाद में इसे खड़ी बोली नाम से पुकारा गया। सर्वप्रथम लल्लूजी लाल एवं सदल मिश्र ने 1803 ई० में इसे 'खड़ी बोली' कहा। वस्तुतः खड़ी बोली दिल्ली व मेरठ के आसपास बोली जाने वाली बोली है।" सन् 1860 संवत में लल्लू लाल ने 'प्रेमसागर' की रचना की तथा उन्होंने भी भाषा के रूप में दिल्ली–आगरे की खड़ी बोली का प्रयोग किया।"[1] आधुनिक काल से पहले राजस्थानी, मैथिली, अवधी व ब्रजभाषा में साहित्यिक रचनाएँ लिखी जा रही थी, परंतु इसका अर्थ यह नहीं था कि उस समय खड़ी बोली जन्मी ही नहीं थी। वास्तव में बोली के रूप में खड़ी बोली आधुनिक काल से पहले भी विद्यमान थी। बोली के रूप में वह भी उतनी ही पुरानी है जितनी हिंदी क्षेत्र की अन्य बोलियाँ। परंतु आधुनिक काल में खड़ी बोली को सर्वप्रथम गद्य की भाषा और तत्पश्चात् पद्य की भाषा के रूप में स्वीकृति मिली।

भारतेंदु युग में खड़ी बोली को साहित्यिक गद्य की भाषा के रूप में स्वीकृति मिली। परंतु इसमें संदेह नहीं कि अखिल भारतीय स्तर पर पारस्परिक आदान–प्रदान की भाषा के रूप में खड़ी बोली का भारतेंदु युग से प्रचार–प्रसार हो चुका था। नाथपंथी जोगियों ने राजस्थान, पंजाब, गुजरात, महाराष्ट्र व बंगाल में खड़ी बोली का प्रचार व प्रसार किया। कबीर पंथियों और सिक्खों ने अपने–अपने प्रभाव क्षेत्रों में खड़ी बोली को प्रचारित किया। दक्षिण में मुसलमानों ने खड़ी बोली के प्रचार में सहायता की। अलाउद्दीन खिलजी के समय से मुसलमानों ने दक्षिण के जिन भी राज्यों पर विजय प्राप्त कर अपना शासन स्थापित किया, वहाँ खड़ी बोली का ही प्रयोग शासन–प्रबंधन के लिए किया। साथ ही पारस्परिक व्यवहार एवं बोलचाल की भाषा के रूप में भी खड़ी बोली का प्रयोग किया। दक्षिण भारत में संतों एवं मुसलमानों के सम्मिलित प्रभाव से इसका जो स्वरूप विकसित हुआ वह 'दक्खिनी' कहलाया । दिल्ली मेरठ के आसपास के व्यापारी भी इसे बाज़ार की भाषा के रूप में भारतवर्ष के विभिन्न भागों में ले गए। अखिल भारतीय स्तर पर जितना प्रचार–प्रसार खड़ी बोली का हुआ, उतना हिंदी की किसी अन्य बोली का नहीं हुआ। यही कारण है कि खड़ी बोली न केवल व्यवहार का माध्यम बनी वरन् धर्म, शासन, व्यापार और साहित्य की भाषा के रूप में भी विकसित हुई।

19वीं शताब्दी से पूर्व खड़ी बोली का साहित्यिक भाषा के रूप में अधिक प्रयोग नहीं मिलता। कबीर पंथियों व नाथ पंथियों ने अपनी रचनाओं में खड़ी बोली का प्रयोग तो किया है परंतु उसके पीछे धर्म की प्रेरणा थी, साहित्य की नहीं। इनकी कुछ रचनाओं को साहित्यिक महत्त्व भी मिला है। इसीलिए खड़ी बोली को साहित्यिक भाषा के रूप में विकसित करने में इनके योगदान को नकारा नहीं जा सकता।

अमीर खुसरो ने सर्वप्रथम साहित्यिक भाषा के रूप में खड़ी बोली को अपनाया और अपनी कविताएँ, पहेलियाँ और मुकरियाँ खड़ी बोली में लिखीं। कुछ विद्वानों ने इस पर संदेह भी प्रकट किया है क्योंकि अमीर खुसरो की रचनाओं में प्रयुक्त खड़ी बोली का रूप वही है जो हमें आज मिलता है। संत कवियों की साखियों के अतिरिक्त मीरा, रहीम, शेख, भूषण, आलम, घनानंद आदि कवियों की रचनाओं में भी यत्र–तत्र खड़ी बोली का प्रयोग मिलता है। वस्तुतः भारतेंदु से पहले खड़ी बोली का साहित्यिक भाषा के रूप में प्रयोग दक्खिन के कवियों और गद्यकारों ने किया। यद्यपि साहित्यिक भाषा के रूप में खड़ी बोली की यह प्रारंभिक अवस्था है, लेकिन खड़ी बोली हिंदी को साहित्यिक भाषा के रूप में विकसित करने में इसका योगदान अस्वीकार नहीं किया जा सकता। "18वीं शताब्दी के अंत तक तो हिंदू लोगों ने भी इस प्रतिष्ठित दरबारी भाषा की ओर ध्यान देना आरंभ कर दिया था। इसे लोग 'खड़ी बोली' कहने लगे थे।"[2]

दक्खिनी हिंदी से भिन्न खड़ी बोली में 19वीं शताब्दी से पूर्व जो कुछेक गद्य रचनाएँ मिलती हैं उनमें सबसे पहली रचना गंग कवि द्वारा रचित 'चन्द छन्द बरनन की महिमा' मानी जाती है। परंतु इसकी प्रामाणिकता पर भी संदेह है। इसके बाद की गद्य रचना जटमल द्वारा रचित 'गोरा बादल की कथा' है। इसकी खड़ी बोली 'राजस्थानी' पुट लिए हुए है। भक्तिकाल में खड़ी बोली में रचित जो गद्य–रचनाएँ मिलती हैं उनमें राजस्थानी, ब्रजभाषा और पंजाबी का मिश्रण मिलता है। रीतिकाल में खड़ी बोली गद्य की अनेक मौलिक एवं अनूदित रचनाएँ मिलती हैं। इनमें रामप्रसाद निरंजनी द्वारा रचित 'भाषा–योग–वशिष्ट', सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रचना मानी जाती है।

कलकत्ता में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना की गई थी जिसका उद्देश्य ईस्ट इंडिया कंपनी के कर्मचारियों को शिक्षा व भाषा–ज्ञान प्रदान करना था। गिलक्राइस्ट को हिंदुस्तानी विभाग का अध्यक्ष नियुक्त किया गया था। वे रोमन और फ़ारसी लिपि,

अरबी–फ़ारसी आक्रांत खड़ी बोली में आस्था रखते थे। उनकी दृष्टि में यही शिष्ट जनों की भाषा थी। फोर्ट विलियम कॉलेज में हिंदी व उर्दू दोनों के गद्य का निर्माण हुआ। इस कॉलेज में खड़ी बोली गद्य का निर्माण करने के लिए दो भाषा मुंशी नियुक्त हुए लल्लूजी लाल और सदल मिश्र। लल्लूजी लाल ने श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध की कथा खड़ी बोली गद्य में 'प्रेमसागर' के नाम से प्रस्तुत की। इनकी खड़ी बोली में अरबी–फ़ारसी के शब्दों का बहिष्कार किया गया। जो गद्य इन्होंने लिखा, वह ब्रजभाषा रंजित सानुप्रास, वाक्यों से युक्त, लंबे–लंबे वाक्यों वाली कथावार्ता की शैली का गद्य होने के कारण व्यवहारोपयोगी सिद्ध नहीं हो सकी। सदल मिश्र ने फोर्ट विलियम कॉलेज के तत्वावधान और गिलक्राइस्ट के आदेशानुसार दो पुस्तकों की रचना की –
'चन्द्रावती और नासिकेतोपाख्यान' एवं 'रामचरित अथवा अध्यात्मरामायण'। इन्होंने व्यवहारोपयोगी गद्य लिखने का प्रयास किया परंतु इन्हें भी अधिक सफलता नहीं मिली। इनके गद्य में एक ओर ब्रजभाषा का प्रयोग है तो दूसरी ओर पूर्वीपन है। यही कारण है कि आगे के गद्य लेखकों के लिए लल्लूजी लाल और सदल मिश्र का गद्य प्रेरक नहीं बन सका। इन दोनों के ही समकालीन खड़ी बोली के दो अन्य गद्य लेखक हैं – सदासुखलाल 'नियाज' तथा इंशा अल्ला खाँ – जिन्होंने स्वाधीन रहकर लिखा। सदासुखलाल ने विष्णु पुराण के नैतिक उपेदशात्मक प्रसंगों के आधार पर 'सुखसागर' की रचना खड़ी बोली गद्य में की। इनकी खड़ी बोली संस्कृतनिष्ठ है और गद्य प्रवाहपूर्ण परंतु पांडित्य या पण्डिताऊपन से युक्त है, इससे यह भी नहीं बच सके। इशां अल्ला खाँ उर्दू के प्रसिद्ध शायर थे परंतु फिर भी इन्होंने शुद्ध खड़ी बोली हिंदी में 'उदयभानचरित या रानी केतकी की कहानी' की रचना की। इनके गद्य में कलात्मकता और प्रवाहपूर्णता तो अवश्य दिखाई पड़ती है परंतु कृत्रिमता को नकारा नहीं जा सकता। यही कारण है कि इंशा अल्ला खाँ भी भावी लेखकों के आदर्श नहीं बन सके।
ईसाई मिशनरियों ने अपने धर्म का प्रचार करने के लिए स्कूल और कॉलेज खोले। स्कूलों में शिक्षा का माध्यम अधिकांशतः खड़ी बोली को रखा गया। पाठ्यपुस्तकें तैयार करने के लिए कलकत्ता, आगरा, इलाहाबाद आदि स्थानों पर 'स्कूल बुक सोसाइटियाँ' स्थापित की गईं और मुद्रणालय शुरू किए गए। इससे विविध विषयों को व्यक्त कर सकने में समर्थ गद्य का विकास हुआ। दूसरी ओर उन्होंने बाइबल, उसके विभिन्न अंशों और ईसाई धर्म के पक्ष में और अन्य धर्मों के विरोध में पुस्तक–पुस्तिकाएँ खड़ी बोली गद्य में प्रकाशित एवं वितरित कीं। पादरियों ने प्रवचनों के लिए भी खड़ी बोली को अपनाया। इससे खड़ी बोली का जो गद्य विकसित हुआ वह अपनी विचित्रताओं के कारण ईसाई गद्य कहा जा सकता है।
हिंदी भाषी क्षेत्रों में जिस सुधारवादी आंदोलन ने सबसे अधिक काम किया, वह आर्य समाज है। इसके संस्थापक स्वामी दयानंद सरस्वती ने अपने संदेश को प्रचारित करने के लिए खड़ी बोली हिंदी को माध्यम बनाया। उन्होंने अपने भाषण संस्कृत की अपेक्षा हिंदी में दिए। उनकी प्रेरणा से उनके अनुयायी भी खड़ी बोली में लेखन, प्रवचन व शास्त्रार्थ करने लगे। इस प्रकार आर्य–समाजियों द्वारा प्रचुर मात्रा में खड़ी बोली में गद्य लिखा गया। पं० श्रद्धाराम फिल्लौरी ने भी खड़ी बोली गद्य में अनेक रचनाएँ लिखीं।

निष्कर्ष

अस्तु; आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दानुसार – "खड़ी बोली हिंदी अद्भुत शक्तिशालिनी भाषा है।"3
खड़ी बोली हिंदी गद्य के विकास में पत्र–पत्रिकाओं का भी बड़ा योगदान रहा है। पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से ही समस्त सुधारवादी चेतना, जागृति और संपूर्ण साहित्य जन–सामान्य तक पहुँचा। हिंदी के पहले साप्ताहिक 'उदन्त मार्तंड' का प्रकाशन कलकत्ता से हुआ। इससे पहले राजा राममोहनराय ने 'बंगदूत' का हिंदी संस्करण निकाला था। कलकत्ता से हिंदी का पहला दैनिक समाचार पत्र 'समाचार सुधावर्षण' निकला। बनारस से राजा शिवप्रसाद ने 'बनारस अख़बार' निकाला। इनकी भाषा का झुकाव अरबी–फ़ारसी शब्दों की ओर अधिक था। इन पत्रों में समाचारों का प्रकाशन ही मुख्य था, साहित्य का प्रकाशन तो नाम मात्र का था। साहित्य का प्रकाशन तो उन पत्र–पत्रिकाओं में हुआ, जिन्हें साहित्यकारों ने निकला। जैसे, भारतेंदु ने 'कवि वचन सुधा', प्रतापनारायण मिश्र ने 'ब्राह्मण', लाला श्रीनिवासदास ने 'सदादर्श' पत्र निकाला। इनका उद्देश्य हिंदी भाषा का प्रचार करना और हिंदी लिखने वालों की संख्या–वृद्धि करना भी था। भारतेंदु युग का अधिकांश साहित्य सर्वप्रथम इन्हीं पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से सामने आया जिसके फलस्वरूप हिंदी भाषा का परिमार्जन संभव हुआ।

संदर्भ सूची

1. नासिकेतोपाख्यानः सदल मिश्र, प्रथम संस्करण, हिंदुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, पृष्ठ–2
2. भारतीय आर्यभाषा और हिंदी, डॉ० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या, प्रथम संस्करण, 1954, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ–216
3. खड़ी बोली आंदोलन, मुंशी देवीप्रसाद, प्रथम संस्करणः 1956, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, भूमिका–भाग